SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आयुर्वेदः एक संक्षिप्तिकी

सुधीर कुमार, Ph.D., संस्कृत विभाग
पंडित महादेव शुक्ल कृषक पी.जी. कॉलेज, गौर बस्ती, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
सुधीर कुमार, Ph.D.
E-mail : sudhirkumar.kumars2@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 05/12/2024
Revised on : 05/02/2025
Accepted on : 14/02/2025
Overall Similarity : 01% on 06/02/2025

शोध सार

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'युज्' धातु से हुआ है। 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर योग शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका तात्पर्य है जोड़, संयमन, समाधि मिलाना, संयुक्त करना आदि। योग–विद्या का महत्व हमारे देश में प्राचीन काल से चला आ रहा है ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखें तो प्रधान रूप में योग का विषय यत्र–तत्र–सर्वत्र विवेच्य है। मनुष्य जीवन के अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष के निरूपण में सर्वत्र ही योग की प्रधानता है। योग का प्रयोग लौकिक एवं अलौकिक भेद से दो प्रकार का माना गया है। लौकिक कार्यों की स्थिति बिना मन के अवधान के नहीं होती। अलौकिक योग के विषय में कहा गया है 'यदयं परमोधर्मा यद् योगेनात्म दर्शनम्' अर्थात् योग से आत्म'–दर्शन करना परम धर्म है। वेद से लेकर स्मृति, उपनिषद, पुराण, इतिहास आदि सभी ग्रन्थों में योग के माहात्म्य को बतलाया गया है। ऋषियों ने वेद. मंत्रों का साक्षात्कार योग द्वारा ही किया था। यह अखिल विश्व योग द्वारा ही बना हुआ है और क्रियाशील है। प्रकृति, माया, परमाणु आदि तत्वों के योग द्वारा ही सृष्टि रचना हुई है, इसलिए योग का महत्व सर्वोपरि है।

मुख्य शब्द

प्रत्याहार, प्राणायाम, ऋग्वेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, चरक.

चूंकि ज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण अथर्ववेद का संबंध मानव जीवन के साथ अधिक है, इसीलिए आयुर्वेद को इसका उपांग माना गया है, परन्तु आयुर्वेद के आचार्यों ने अथर्ववेद को ही इसका उपजीव्य स्वीकार किया है।

''चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामथर्ववेदे भवितरादेश्या।''[1]

''इह खलु आयुर्वेदमष्टांगमथर्ववेदस्य।''[2]

''अथर्ववेदोपनिषत्सु प्रागुत्पन्नः।
''ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदेभ्यरू पञ्चमोऽयमायुर्वेदः।''[3]

उपांग का अर्थ निकटवर्ती मुख्य भाग है। आयुर्वेद का अथर्ववेद के साथ अतिशय निकटतम संबंध है।

आयुर्वेद शब्द तात्पर्य

आचार्य चरक मुनि ने चरक संहिता सूत्र में आयु को चेतना–अनुबंध, जीवितानुबंध, जीवनशास्त्र का पर्याय बतलाया गया है। चरक संहिता के अनुसार शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। चरक संहिता में यह बतलाया गया है कि आयु का संबंध केवल शरीर से नहीं अपितु उपरोक्त चारों का सम्यक् ज्ञान ही आयुर्वेद है। महर्षियों और आचार्यों ने आत्मा का भोगायतन शरीर को बतलाया है। पंचमहाभूत तत्वों को विकारात्मक कहा है और समस्त भोग के साधन के रूप में इंद्रियों को प्रस्तुत किया है, अंतःकरण से मन को इंगित किया है, मोक्ष या ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में आत्मा को प्रतिस्थापित किया है, इन चारों का अदृष्ट कर्मवश से जो संयोग यमिलापद्ध होता है, उसे आयु कहा है। वहीं चरक संहिता में हित–अहित, सुख–दुःख तथा आयु के मान के उल्लेख स्थल के रूप में आयुर्वेद को बतलाया है।

''हिताहितं सुखं दुःखंमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।''[4]

उपमा सम्राट कालिदास ने भी अपने महाकाव्य ष्कुमारसंभवम्ष् में शरीर को ही धर्म का मुख्य साधन बतलाया है।

''शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्।''[5]

ज्ञान के पुंजीभूत राशि के रूप में चारों वेदों का यह मूल उपदेश कि हमारे लिए अर्थात् प्राणि मात्र के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, क्या आनन्दमय रूप है और क्या दुःखमय रूप है, इन सभी का समाधान आयुर्वेद में मिलता है । काश्यप महर्षि का भी कथन है कि जिस प्रकार हाथ में चार अंगुलियां और पांचवां अंगुष्ठ है, ये पांचों एक ही हाथ में रहते हुए भी नाम और रूप से भिन्न हैं और चारों अंगुलियों पर एकक्षत्र शासन करता हुआ अंगुष्ठ विलसित होता है, उसी प्रकार चारों वेदों के साथ रहता हुआ भी पांचवां आयुर्वेद इन सब में मुख्य है।

'तद्यथा–दक्षिणे पाणौ चतसृणामअंगुलीनामङ्गुष्ठ अधिपत्य कुरुते न च नाम ताभि सह समता गच्छति, एकश्मिंश्च पाणौ भवति। एवमेवायमृग्वेद यजुर्वेदाथर्ववेदेभ्यः पञ्चमो भवत्यायुर्वेदः।''[6]

आयुर्वेद की उत्पत्ति

वेदों के मन्त्रों में देवतावाद है। प्रत्येक सूक्त का कोई देवता होता है। जिस सूक्त में जिस देवता की प्रार्थना होती है, वह उसका देवता होता है। इस प्रकार से मरुत्, इन्द्र, अप् आदि देवताओं के समान अश्विनौ भी देवता हैं जो युगल रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं।

अश्विनौ का मुख्य संबंध चिकित्सा के साथ है। अश्विनौ ने वैदिक देवताओं की चिकित्सा की थी। च्यवन ऋषि के शाप से शापित इंद्र के भुजस्तंभ रोग को अश्विनौ ने ही ठीक किया था।

विभिन्न आयुर्वेदिक प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि 2500–5000 ईसा पूर्व में आयुर्वेद का उल्लेख वर्णित है। सभी में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि सर्वप्रथम इसका उपदेश ब्रह्मा के द्वारा किया गया था। ब्रह्मा से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को, दक्ष प्रजापति से अश्विन युगल को, अश्विन युगल से इसका उपदेश इंद्र को प्राप्त हुआ, इंद्र से इसका ज्ञान भारद्वाज ऋषि और भगवान धन्वंतरि को हुआ। भारद्वाज ऋषि से इसका उपदेश आत्रेय पुनर्वसु को प्राप्त होता है और आत्रेय पुनर्वसु से उनके छः शिष्यों को क्रमशः प्राप्त होता है जिनके नाम इस प्रकार हैंः अग्निवेश >भेल >जतुकर्ण >पाराशर >हारीत >क्षारपाणि।

इसी प्रकार भगवान धन्वंतरि से आयुर्वेद का रहस्य उनके सात शिष्यों में क्रमशः प्राप्त होता है। औपधेनव >वैतरण >औरभ्र झपौषकलावत >करवीर्य >गोपुररक्षित >सुश्रुत ।

आयुर्वेद का उपदेश चक्र

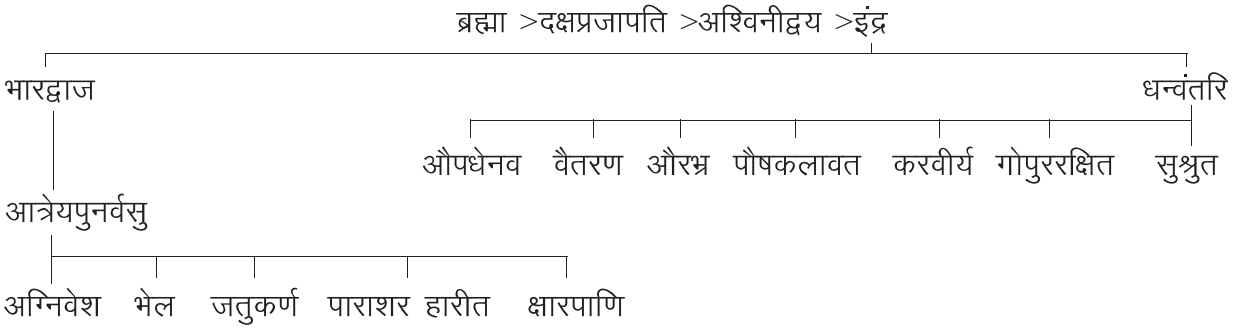

पौराणिक ग्रन्थों में हम भगवान धन्वंतरि का जो चित्र देखने को पाते हैं उसमें उनके एक हाथ में आयुर्वेद शास्त्र तथा दूसरे हाथ में अमृत कलश ग्रहण किए हुए हैं। इसका तात्पर्य भी स्पष्ट है कि हमें आयुर्वेद शास्त्र का गहन अध्ययन करते हुए अपने शरीर को विभिन्न व्याधियों से रक्षित करते हुए निरंतर युवा बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहना होगा, जिस प्रकार अमृत पान के द्वारा शरीर का क्षय असंभव हो जाता है ठीक उसी प्रकार आयुर्वेद के रहस्य पूर्ण ज्ञान से भलीभांति परिचित होते हुए अपने शरीर को चिरकाल तक स्वस्थ और युवा बनाए रखा जा सकता है।

आयुर्वेद में वैद्य का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है.

''यात्रौषधी समग्मत राजान समितामिव।
विप्र स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातन।।''[7]

अर्थात् 1 सम्पूर्ण औषधियों को अपने पास ठीक रखने वाला, 2 अपने शास्त्र का सांगोपांग ज्ञाता अर्थात् विशेष प्रबुद्ध, 3 योजना और युक्ति को जानने वाला, 4 राक्षसों का नाश करने में समर्थ और 5 रोगों को समूल नष्ट कर सकने वालाए ये पांच लक्षण वैद्य के बतलाए गए हैं।

''ऋग्यजुसामाथर्ववेदाभिहितै परैश्चाशीर्विधानैरुपाध्याया
भिषजश्च सन्ध्यो रक्षा कुर्यु।''[8]

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में कहे तथा अन्य कल्याणकारी वचनों और उपायों से उपाध्याय, पुरोहित और वैद्य सन्ध्याकाल में हमारी रक्षा करें।

औषधीय चिकित्सा

औषधि का अर्थ ही है वेदना को दूर करने वाली वस्तु।

''ओष रुज धयति इति ओषधि।''

ओष नाम का रस भी है, वह रस जिसमें रहता है वह औषधि है.

''ओषो नाम रस सोऽस्या धीयते इति औषधि।''

वेद में औषधि के लिए ''माता'' शब्द आता है.

''ओषधी रीति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे।''[9]

वेद में वर्णन भी है कि वनस्पतियों या औषधियों के उपयोग से रोग दूर होते हैं।

रुद्र सूक्त में वनस्पतियों और औषधियों से रोग का इलाज करने वाले वैद्य का वर्णन करते हुए वैद्य का लक्षण इस प्रकार किया है:

श्रोग बीजों का नाश करने वालाए राक्षसों का संहार करने वाला, योग्य मार्ग का उपदेश करने वालाए बचाने वाला वैद्य होता है।

रुद्र सूक्त में रूद्र को दिव्य–वैद्य कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में वैद्य के क्रियाकलाप को इस प्रकार वर्णित

किया गया है।

''अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्चयातुषान्यो धराची परासुव।।[10]

ऋग्वेद के दसवें मंडल में तो एक संपूर्ण सूक्त ही औषधीयों के लिए समर्पित है।

''या औषधी पूर्वा जता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा।
मनै नु वभ्रूणामह शत धामानि सप्त च।।[11]

अर्थात् जो औषधि या वनस्पति और देवों से तीन युग पहले उत्पन्न हुई थी उन भरण–पोषण करने वाली औषधियों के 100 और 7 स्थान या जातियॉ हैं, ऐसा मैं जानता हूँ।

''ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवी रूप ब्रुवे ।
सनेयमश्व गा वास आत्मान तव पूरुषे।।''[12]

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में इसके दो मुख्य ध्येय बतलाए गए हैं।

''प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य
स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।''[13]

अर्थात् आयुर्वेद का ध्येय स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को निरन्तर बनाए रखना तथा किसी रोग के उत्पन्न होने पर उसको समूल नष्ट करने के लिए उस रोग का इलाज करना है।

आयुर्वेद में जीवन को लेकर इस प्रकार विचार व्यक्त किए गए हैं।

''यावन्तः पुरुषे मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्त एवास्मिन् स्रोतसां प्रकारविशेषाः।''[14]

स्वास्थ्य की परिभाषा देते हुए आयुर्वेद में मंत्र उल्लिखित हैः

''समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[15]

इसके अनुसार स्वस्थ वह है जिस शरीर में दोष, अग्नि, धातु तथा मल ये चारों साम्यावस्था में पाए जाते हैं। इन चारों के वैषम्यावस्था को ही अस्वस्थ कहा जाता है। आयुर्वेद इन्हीं चारों को साम्यावस्था में बनाए रखने के लिए तत्पर रहता है जिससे शरीर निरन्तर स्वस्थ बना रहे और इनके वैषम्यावस्था के प्राप्त होने पर उसके अनुसार औषधियों का प्रयोग करते हुए इनके वैषम्यावस्था को शमित करने का प्रयास करता है।

सामान्य रूप से कहा भी जाता है कि स्वस्थ वह है जो शारीरिक यकायिकद्ध स्वास्थ्य के साथ ही साथ मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक रूप से भी जो पूर्णतया चैतन्य रहता है, स्वस्थ रहता है, वही अन्ततः पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहा होता है।

''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' के अनुसार भी स्वास्थ्य में केवल निरोगी काया ही नहीं अपितु शारीरिक के साथ ही साथ मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी आता है।

"Health is a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease or infirmity." *WHO*

आयुर्वेद में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है कि एक वैद्य को वीर्यवती औषधियों के प्रयोग द्वारा रोगी के समस्त रोग को दूर कर उसके भीतर बल–एक घोड़े जैसी शक्ति का संचार करे। ऋग्वेद में भी ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीव गृहों यथा।।[16]

उपरोक्त मंत्र में ''वाजयन्'' शब्द वाजीकरण नामक आयुर्वेद के एक अंग को सूचित करता है, वाज से तात्पर्य बल है, घोड़ा बलवान होता है इसलिए उसे वाजी कहते हैं, शक्ति के माप की इकाई को भी ''हार्स पावर'' कहते हैं।

''अवाजिन वाजिब कुर्वन्ति अनेन इति वाजीकरणम्।
वाजो वेगए वाज शुक्रम्।

''चरक संहिता सूत्र'' में आयुर्वेद के तीन उपस्तम्भ बतलाये गये हैं। आहार अर्थात् भोजन जो ग्राह्य है, स्वप्न अर्थात भरपूर नींद जिससे शरीर के सभी कोशिकाओं को तरोताजा होने के लिए आवश्यक समय प्राप्त हो और तीसरे उपस्तम्भ के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य अर्थात् सदाचार की गणना की गयी है। चरक मुनि के अनुसार यदि व्यक्ति अपने जीवन में सदाचार का कठोरतम पालन करे तो उसे किसी भी प्रकार की औषधि की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी क्योंकि सदाचारी व्यक्ति किसी बीमारी से ग्रसित ही नहीं होगा और शारीरिक, मानसिक पौरुष के साथ–साथ आत्मिक पौरुष से भी आल व्याल व्याप्त हो जाता है, वहीं सच्चे अर्थों में स्वस्थ शरीर वाला होता है।

अष्टांग–आयुर्वेद

आयुर्वेद में इसकी विषयवस्तु आठ अंगों के अन्तर्गत विवेचित है।

कायबालग्रहोर्ध्वांगशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टौ अंगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रितता।।[17]

आठों अंग इस प्रकार हैं:

1. काय चिकित्सा General Medicine
2. बाल चिकित्सा (कौमारभृत्य) Paediatrics
3. ग्रह चिकित्सा (भूत विद्या) Demonology
4. ऊर्ध्वांग चिकित्सा (शालाक्य तन्त्र) ENT and Ophthalmology
5. शल्य चिकित्सा तन्त्र Surgery
6. दंष्ट्राविष चिकित्सा (अगद तन्त्र) Toxicology
7. जरा चिकित्सा (रसायन तन्त्र) Geriatics
8. वृष चिकित्सा (वाजीकरण तन्त्र) Aphrodisiacs

1. काय चिकित्सा

इसमें संपूर्ण शरीर को पीड़ित करने वाले आमाशय तथा पक्वाशय से उत्पन्न होने वाले ज्वर आदि समस्त रोगों की शान्ति का उपाय किया जाता है।

चरक संहिता के ''अग्निवेश तन्त्र'', ''हारीत संहिता'' तथा ''भेल संहिता'' में इस चिकित्सा का उल्लेख मिलता है।

2. कौमारभृत्य/बाल तन्त्र

इसके अंतर्गत बालकों के शरीर में परिपूर्ण बल तथा धातुओं आदि के अभाव से होने वाले रोगों के उपचार को बतलाया गया है।

इस विषय पर ''काश्यप संहिता'' ही एकमात्र प्राचीन ग्रंथ है जो वर्तमान में खंडित अवस्था में उपलब्ध होता है।

3. ग्रह चिकित्साध्भूत विद्या

इसके अर्न्तगत देव, पूतना, असुर आदि ग्रहों से आविष्ट प्राणियों के लिए शान्ति कर्म की व्यवस्था प्रतिपादित है। इसका उल्लेख वर्तमान में केवल चरक संहिता. निदान स्थान 7/10–16, ''चरक चि० 9/16–21'' और ''सुश्रुत संहिता उत्तर तन्त्र अध्याय 27–37'' तक तथा अध्याय 60 में भूतविद्या से संबंधित उपदेश प्राप्त होते हैं।

4. ऊर्ध्वांग चिकित्सा/शालाक्य तन्त्र

शरीर के उर्ध्व अंग आंख, मुख, कान, नाक आदि में होने वाले रोगों की शलाका आदि के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा यहां वर्णित है। सुश्रुत संहिता तथा चरक संहिता के अन्तर्गत यत्र.तत्र इससे संबंधित चिकित्सा का उल्लेख मिलता है।

5. शल्य तन्त्र

आयुर्वेद का यह अंग उसका ''हृदय'' कहलाता है। इसमें मूलतः यन्त्र, शस्त्र, क्षार तथा अग्नि के प्रयोगों का निर्देश मिलता है। आयुर्वेद में सुश्रुत को विश्व का प्रथम शल्य चिकित्सक बतलाया गया है।

6. अगद तन्त्र/दंष्ट्राविश चिकित्सा

आयुर्वेद के इस अंग के अन्तर्गत सर्प आदि जंगम तथा वत्सनाभ आदि स्थावर विषों के लक्षणों का एवं विविध प्रकार के गरविषों का वर्णन तथा उनके शमन के उपायों का वर्णन है।

इस चिकित्सा का उल्लेख ''सुश्रुत सूत्र स्थान 3/28, कल्प स्थान'' में तथा चरक संहिता के ''विष चिकित्सित'' नामक 23 वें अध्याय में दर्शनीय है।

7. जरा चिकित्सा/रसायन तन्त्र

आयुर्वेद के इस तन्त्र के अंतर्गत वायः स्थान, आयु को बढ़ाने, मेधा धारण शक्ति तथा सभी प्रकार के बाल को बढ़ाने एवं रोगों के विनाश की विस्तृत चर्चा की गई है।

8. वृष चिकित्सा/वाजीकरण तन्त्र

आयुर्वेद के इस अंग के अन्तर्गत अल्प मात्रा वाले शुक्र के सन्तर्पण, दूषित शुक्र की शुद्धता, क्षीण शुक्र का वर्द्धन, शुष्क शुक्र के उत्पादन आदि के उपायों का निर्देश प्राप्त होता है। सुश्रुत संहिता तथा चरक संहिता में स्पष्ट उल्लिखित है। ''वर्षति इति वृषः'' अर्थात् जो योनि में वीर्य की वर्षा करे किन्तु वह वृष यसांडद्ध वाजी यघोड़ेद्ध के समान वेग वाला नहीं होता, अतः अधिकतर ''वाजीकरण''शब्द ही मिलता है।

निष्कर्ष

आयुर्वेद के विषय में अत्रि पुत्र का निम्न कथन उल्लेखनीय हैः

''इदमखिलमधीत्य सम्यगर्यान् विमृशतियोऽविमनाः प्रयोगनित्यः।
स मनुज सुखजीवितप्रदाता भवति धृतिस्मृतिबुद्धि धर्मवृद्धः।।
यस्य द्वादशसाहस्री हृदि तिष्ठति सहिता ।
सोऽर्थज्ञ स विचारज्ञश्चिकित्सा कुशलश्च स।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।''[18]

यह आयुर्वेद जनकल्याण करने वाला है, इसको जानने वाला मनुष्य अर्थ को जानने वालाए विचारवान् और उत्तम चिकित्साज्ञ होता है। इस संहिता में जो है, वही अन्यत्र मिलता है, जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं। ऐसा कहने वाले ऋषि अत्रिपुत्र के वचनों के चारों ओर सीमा या परिधि नहीं खींचनी चाहिए, विश्वास के साथ, सबके समक्ष उपस्थित करने में अपना अहोभाग्य, गौरवमान समझना चाहिए इससे सत्य की परीक्षा होगी। सत्य ही शुद्ध है अग्नि में पड़ने पर अशुद्ध मैल समूल नष्ट हो जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. चरक सूत्र अध्याय 30।
2. सुश्रुत सूत्र अध्याय 1।

3. काश्यप।
4. चरक संहिता सूत्र अध्याय 1/41।
5. कुमारसंभवम् 5/33।
6. काश्यप।
7. चरक सूत्र।
8. सुश्रुत सूत्र 20/27।
9. ऋग्वेद 10/97/4।
10. शतपथ ब्राह्मण 1/1/4।
11. ऋग्वेद 10/97/1।
12. ऋग्वेद 10/90/4।
13. चरक संहिता सूत्र।
14. चरक संहिता सूत्र।
15. चरक संहिता सूत्र।
16. ऋग्वेद 10/97/110।
17. अष्टांगहृदय/वाग्भट्ट 1/3।
18. चरक सि०अ० 12/51–52–54।

****